Class — T.D.C Part I
Paper — II तत्वमीमांसा
(Metaphysics)

डॉ० पूनम शर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर
दर्शनशास्त्र विभाग
आर० एस० कॉलेज

दर्शन का स्वरूप
(Nature of Philosophy)

दर्शनशास्त्र ज्ञान की एक विशेष शाखा है जिसके द्वारा जीवन एवं विश्व को सम्पूर्णता में समझने का प्रयास किया जाता है। जीवन एवं विश्व से जुड़े हुए मूलभूत प्रश्नों के समाधान की चेष्टा दर्शनशास्त्र के द्वारा की जाती है। जैसे — विश्व का आधार क्या है? जीवन का मूल स्वरूप क्या है? आदि। इन प्रश्नों के माध्यम से जीवन के तह में (सत्य तक) जाने की चेष्टा होती है। इसलिए दर्शन शब्द का अर्थ है — सत्य का साक्षात्कार करना। अंग्रेजी में Philosophy शब्द का भी यही अर्थ है — मूल ज्ञान के प्रति प्रेम (Love of Wisdom)।

ज्ञान को प्राप्त करने की लालसा भारत एवं पश्चिमी देशों में समान रूप से रही है। भारत में एक ओर जीवन से जुड़कर ज्ञान की खोज होती रही, जिससे व्यावहारिक समस्याओं (दुःख, जन्म, मृत्यु आदि) का समाधान हो सके, तो दूसरी ओर पश्चिमी देशों में उसकी उत्पत्ति का आधार दूसरा रहा। पश्चिमी देशों में विश्व एवं जीवन को जानने की उत्सुकता से उसके मूल स्रोत तक जाने का प्रयास किया गया। इस आधारभूत तत्व या मूल स्रोत को दर्शनशास्त्र में 'परम तत्व' (Ultimate Reality) कहा जाता है। ज्ञान की इस खोज में भारत की दृष्टि व्यावहारिक और पश्चिमी देशों की सैद्धान्तिक रही है।

दार्शनिक अध्ययन में निष्पक्षता एवं बौद्धिकता पर बहुत अधिक बल दिया जाता है। भावों या मनोवेगों के आधार पर दार्शनिक निष्कर्ष नहीं निकाले

जाने, तार्किक तर्क एवं बौद्धिक चिन्तन के आधार पर निश्चित किया जाता है कि अनुभूति की वास्तविक (Real), सामंजस्यपूर्ण (Coherent) एवं व्याघातरहित (Non-Contradictory) है या नहीं। अनुभूति को सामंजस्यपूर्ण कहने का अर्थ है — दो या उससे अधिक विचारों का एक-दूसरे से संगत होना। इसीप्रकार अनुभूति को व्याघाती तभी कहा जाता है जब असम्भव होने वाले दो विचार एक साथ व्यक्त किये जायें। जैसे— मृत रामबाबू हमारे मिलने आ रहे हैं। जीवन और मृत्यु दोनों एक साथ सम्भव नहीं है।

दर्शन में विश्व एवं जीवन का अध्ययन राग-द्वेष, निजी स्वार्थ से रहित निष्पक्ष होता है। किसी स्वार्थ पर आधारित जीवन या विश्व का स्वरूप उसके वास्तविक रूप में नहीं होगा, अपितु वैसा होगा जिस रूप में देखने से स्वार्थ या लक्ष्य की पूर्ति होगी। इसलिए यथार्थ ज्ञान के लिए निष्पक्ष दृष्टि का होना आवश्यक है।

दर्शन का एक अन्य महत्त्वपूर्ण स्वरूप है कि इसमें सम्पूर्णता का अध्ययन होता है जो अंशों का योगमात्र नहीं है। किसी वस्तु के भिन्न-भिन्न भागों को देखकर या जानकर उसे सम्पूर्णता में नहीं जाना जा सकता। जैसे— आम, उसके पत्ते, उसकी शाखाओं को पृथक्-पृथक् रूप में जानना और उसे जोड़कर देखना फल से लदे हुए आम के वृक्ष को देखने के समान नहीं होता। किसी विषय की सम्पूर्णता का ज्ञान इन योगों से भिन्न है।

दर्शन की पद्धति के सन्दर्भ में भारत एवं पश्चिमी देशों में मतभेद रहा है। पाश्चात्य दर्शन की पद्धति मुख्य रूप से बौद्धिक (Rational) है, किन्तु भारतीय दर्शन की पद्धति सीधे साक्षात्कार (Direct experience) पर बल देती है, जो आध्यात्मिक (Spiritual) ज्ञानेन्द्रिय या बुद्धि पर आधारित न होकर अन्तःप्रज्ञात्मक (Intuitive) या रहस्यात्मक (Mystical) होती है इसे अन्तःप्रज्ञात्मक अनुभूति भी कहा जाता है। बौद्धिक अनुभव में ज्ञाता (Subject)

तथा ज्ञेय (Object) का भेद बना रहता है अर्थात् अनुभवकर्ता तथा अनुभव का विषय — ये दोनों भिन्न होते हैं। किन्तु रहस्यात्मक या अपरोक्षात्मक अनुभूति में ये दोनों एक में लीन हो जाते हैं। इस अवस्था में जाने के लिए कठिन साधना की आवश्यकता होती है। मन, वचन एवं कर्म की पवित्रता तथा एकाग्रता अनिवार्य है। इसलिए भारतीय प्रणाली में दर्शन का लक्ष्य है — दुःखों का पूर्ण अन्त या मुक्ति (मोक्ष)।

दर्शन और धर्म
(Philosophy and Religion)

मानव अपने जीवन के सीमित, अधूरे एवं अपूर्ण स्वरूप को देखकर किसी असीम एवं पूर्ण स्वरूप की कल्पना करता है और इसी आधार पर धार्मिक चेतना की उत्पत्ति होती है। उसे यह बोध होता है कि वही (ईश्वर) जीवन का मूल आधार है। इसप्रकार ईश्वर के रूप में परम सत्ता (Highest Reality) और परम मूल्य (Highest Value) की अनुभूति होती है। इसी आस्था उत्पन्न होती है कि वही जीवन एवं जगत के अस्तित्व (Existence) एवं अर्थ (Meaning) का अन्तिम कारण (Final Cause) है। धर्म में ईश्वर जीवन का सर्वोच्च आध्यात्मिक मूल्य है (The Highest Spiritual Value) है। धार्मिक आचरण में व्यक्ति की समस्त शारीरिक एवं मानसिक क्रियाएँ जुड़ी होती हैं। ईश्वर से रहित धर्म (जैसे — जैन धर्म, बौद्ध धर्म आदि) में आध्यात्मिक मूल्यों को स्वीकार किया जाता है जो जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य हैं। इसप्रकार जीवन की व्यावहारिक समस्याओं के समाधान के लिए ईश्वर या आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति आस्था एवं श्रद्धा की भावना होती है। इन मनोभावों की अभिव्यक्ति विशेष प्रकार के क्रिया-कलापों (जैसे — पूजा-अर्चना, मंत्रजाप, नमाज, प्रार्थना आदि) के द्वारा होती है। धर्म में आस्था का पक्ष प्रबल होता है

का विरह के समान [illegible] का [illegible] इसलिए [illegible] के आध्यात्मिक मूल्यों को ही माना जाता है।

दर्शन की [illegible] — दर्शन के [illegible] तर्क बुद्धि का विकास करता। इसके लिए [illegible] बौद्धिक पद्धति अपनाती है जिससे [illegible] का आध्यात्मिक समाधान हो सके। [illegible] के [illegible] की खोज करने के लिए इसके [illegible] किया जाता है। इसप्रकार दर्शन में [illegible] प्रधानता होती है।

दर्शन एवं धर्म 'परम सत्य' की खोज [illegible] भिन्न-भिन्न मार्ग अपनाते हैं। इस खोज में दोनों [illegible] के सहायक हैं। दर्शन इसके लिए तर्क एवं बौद्धिकता का [illegible] होता है तथा धर्म परम सत्य (ईश्वर या आध्यात्मिक मूल्य) के प्रति [illegible] बनाने का प्रयास करता है। [illegible] की [illegible] एवं [illegible] के कारण धर्म में कभी कभी [illegible] एवं विश्वास की प्रधानता के कारण [illegible] अन्धविश्वास, निरर्थक कर्मकाण्ड का प्रवेश हो जाता है। इससे धर्म पतन की ओर अग्रसर होने लगता है। धर्म के इतिहास में ऐसे अनेक अवसर आते रहे हैं। ऐसी स्थिति के आने पर दर्शन तर्क एवं बौद्धिकता के आधार पर धर्म की मूलभूत मान्यताओं की [illegible] कर धार्मिक [illegible] बनाने की चेष्टा करता है। इसीप्रकार विश्वास को सुदृढ़ [illegible] बनाने की [illegible]। धर्म भी दर्शन के लिए नवीन विश्व-दृष्टि प्रदान करता है। धर्म में निहित तत्त्व केवल कपोल-कल्पनाएँ नहीं होतीं। कभी-कभी अन्तर्ज्ञानात्मक या रहस्यात्मक अनुभूति से [illegible] के आधार पर 'परम सत्य' की झलक मिल जाती है। [illegible] अनुभूति के इस स्तर पर पहुँचे हुए व्यक्ति को अपने जीवन का अर्थ मिल जाता है, किन्तु इससे लोग इस विशेष [illegible] का लाभ नहीं उठा पाते। इसका मूल कारण है कि अनुभूति का [illegible] अनुभूति निजी होती है। ऐसी स्थिति में दर्शन इस [illegible] अनुभूति

अनुभूति को साधारण लोगों तक पहुँचाने का कार्य करता है। दर्शन अनुभूति का तार्किक-बौद्धिक रूप प्रस्तुत कर साधारण लोगों में अभिव्यक्त करने की चेष्टा करता है। इसप्रकार धर्म और दर्शन एक-दूसरे के बहुत सहायक हैं।

भारत में दर्शन एवं धर्म का भेद बहुत स्पष्ट नहीं है। दोनों साथ-साथ चलते हैं और जीवन की व्यावहारिक समस्याओं का समाधान करते हैं। इस घनिष्ठ सम्बन्ध के कारण भारत में कभी भी उनके बीच कोई विरोध या लड़ाई की स्थिति उत्पन्न नहीं हुई। भारत के इतिहास में कहीं भी ऐसा उदाहरण नहीं मिलता, जैसा धर्म की आड़ में सुकरात जैसे दार्शनिक को मार दिया गया। पश्चिमी देशों में दर्शन एवं धर्म के बीच स्पष्ट भेद दिखता है, इसलिए भारत के दर्शन एवं धर्म पर सदा आरोप लगाते रहे हैं कि यहाँ दर्शन नाम की कोई चीज ही नहीं है। फिर भी पश्चिमी विचारकों में कुछ दार्शनिकों (जैसे—ब्रैडले, बर्गसाँ आदि) ने रहस्यात्मक अनुभूतियों को दर्शन का मूल आधार माना है।

इसप्रकार स्पष्ट है कि दर्शन व्यक्ति की अन्तःप्रज्ञात्मक अनुभूतियों को तर्कपूर्ण रूप में प्रस्तुत कर मूलभूत सिद्धान्तों की स्थापना करता है तथा धर्म अपने आध्यात्मिक मूल्यों के द्वारा सम्पूर्ण विश्व की व्याख्या करता है। इसलिए दर्शन एवं धर्म के बीच विषय की दृष्टि से एकता है, भले-ही प्रकृति एवं उत्पत्ति के आधार पर दोनों में भिन्नता हो।

—— X —— X ——